सम्पादकीय

नियमसार : एक अनुशीलन

नियमसार गाथा २६

विगत गाथा में आरंभ की गई परमाणु के प्रकारों की चर्चा के उपरान्त इस गाथा में परमाणु के स्वरूप पर विचार करते हैं। गाथा मूलत: इसप्रकार है ह्न

अत्तादि अत्तमज्झं अत्तंतं णेव इंदियग्गेज्झं।
अविभागी जं दव्वं परमाणू तं वियाणाहि॥२६॥

(हरिगीत)

इन्द्रियों से ना ग्रहे अविभागि जो परमाणु है।
वह स्वयं ही है आदि एवं स्वयं ही मध्यान्त है॥२६॥

आदि, मध्य और अन्त से रहित, इन्द्रियों से अग्राह्य और जिसका विभाग संभव नहीं है ह्न ऐसा अविभागी पुद्गलपरमाणु द्रव्य है।

इस गाथा का भाव तात्पर्यवृत्ति टीका में मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव इसप्रकार स्पष्ट करते हैं ह्न

''यह परमाणु का विशेष कथन है। जिसप्रकार सहज परमपारिणामिक भाव की विवक्षा का आश्रय करनेवाले सहज शुद्धनिश्चयनय की अपेक्षा नित्यनिगोद और अनित्यनिगोद से लेकर सिद्धक्षेत्र पर्यन्त विद्यमान जीवों का निजस्वरूप से अच्युतपना कहा गया है; उसीप्रकार पंचम भाव की अपेक्षा परमाणु द्रव्य का परमस्वभाव होने से परमाणु स्वयं ही अपनी परिणति का आदि है, स्वयं ही अपनी परिणति का मध्य है और स्वयं ही अपना अन्त भी है।

तात्पर्य यह है कि परमाणु आदि, मध्य और अन्त में स्वयं ही है; वह कभी भी अपने स्वभाव से च्युत नहीं होता।

जैसा ऊपर कहा है, वैसा होने से; इन्द्रियज्ञानगोचर न होने से और पवन, अग्नि आदि से नष्ट न होने से जो अविभागी है; हे शिष्य तू उसे परमाणु जान।''

इस गाथा के भाव को स्वामीजी इसप्रकार स्पष्ट करते हैं ह्न

''तीर्थंकर भगवान ने छह द्रव्य देखे हैं, वे सभी अतीन्द्रिय हैं। एक भी पदार्थ इन्द्रियग्राह्य नहीं है। **जो स्थूल दिखता है, वह मूल द्रव्य नहीं है, वह तो पुद्गल की वैभाविक अवस्था है। मूल वस्तु तो परमाणु है और वह अतीन्द्रियज्ञान का विषय है। अतीन्द्रिय आत्मा का ज्ञान होने पर अन्य अतीन्द्रिय पदार्थों का यथार्थ ज्ञान होता है।**

परमाणु अतीन्द्रिय है, वह उग्र अवधिज्ञान का विषय है और अवधिज्ञान सम्यग्दृष्टि को ही होता है। **विभंगज्ञानी अर्थात् कुअवधिज्ञानी परमाणु को नहीं जानता।** इससे यह निश्चित हुआ कि परमाणु का ज्ञान अवधिज्ञान बिना नहीं होता और अवधिज्ञान सम्यग्ज्ञान बिना नहीं होता और सम्यग्ज्ञान अतीन्द्रिय आत्मा के ज्ञान के बिना नहीं होता; अत: **अतीन्द्रिय आत्मा का ज्ञान ही श्रेयस्कर है।**[१]

यहाँ टीकाकार मुनिराज परमाणु को आत्मा के साथ जोड़कर उदाहरण के द्वारा समझाते हैं कि पंचमभाव की अपेक्षा से परमाणुद्रव्य का परमस्वभाव स्वयं ही अपनी परिणति का आदि है और स्वयं ही अपनी परिणति का अंत भी है।

वह आदि में भी स्वयं ही, मध्य में भी स्वयं ही एवं अंत में भी स्वयं ही है; क्योंकि वह अपने निजस्वरूप से च्युत नहीं होता। प्रत्येक वस्तु अपने आदि, मध्य और अंत में रहती है।

परिणति कहने से पर्याय का वर्णन नहीं हो रहा है; अपितु आदि, मध्य और अंत ह्न ऐसे तीन प्रकार बताने के लिए परिणति शब्द का प्रयोग किया गया है, पर बात तो द्रव्य की ही है।[२]''

इसप्रकार इस गाथा में यह कहा गया है कि पौद्गलिक परमाणु ही मूलत: पुद्गल द्रव्य है; क्योंकि स्कंध तो पुद्गल द्रव्य की समानजातीय द्रव्यपर्याय है।

यद्यपि उक्त परमाणु रूपी पदार्थ है; अत: उसे इन्द्रियग्राह्य होना चाहिए था; क्योंकि इन्द्रियाँ रूपी पदार्थों को जानने में निमित्त होती हैं; तथापि परमाणु इन्द्रियग्राह्य नहीं है; क्योंकि वह अत्यन्त सूक्ष्म पदार्थ है। इसप्रकार यह सुनिश्चित होता है कि छह द्रव्यों में से कोई भी द्रव्य मूलत: इन्द्रियग्राह्य नहीं है; सभी पदार्थ अतीन्द्रिय ज्ञान के ही विषय हैं।

ध्यान रखने की बात यह है कि अकेला केवलज्ञान ही अतीन्द्रिय ज्ञान नहीं है, अवधिज्ञान और मन:पर्ययज्ञान भी अतीन्द्रिय हैं; क्योंकि वे अपने-अपने विषय को इन्द्रियों के सहयोग के बिना ही जानते हैं। परमाणु भी विशेष प्रकार के सम्यक् अवधिज्ञान का विषय है।

एक बात यह भी ध्यान रखने योग्य है कि मतिज्ञान और श्रुतज्ञान के विषय छहों द्रव्य हैं तथा परमाणु आदि अतीन्द्रिय पदार्थ अनुमानादि रूप मतिज्ञान और आगमरूप श्रुतज्ञान से भी जाने जाते हैं।

ध्यान रहे अकेले प्रत्यक्ष जानने को ही जानना नहीं कहते, परोक्षज्ञान भी ज्ञान है और वह सम्यग्ज्ञानरूप भी होता है। हाँ, यह बात अवश्य है कि परमाणु को मति-श्रुतज्ञान प्रत्यक्षरूप से नहीं जान सकते; क्योंकि वे ज्ञान परोक्षज्ञान ही हैं।

अन्त में टीकाकार एक छन्द लिखते हैं, जो इसप्रकार है ह्न

१. वीतराग-विज्ञान : जनवरी २००८, पृष्ठ २३ २. वही, फरवरी २००८, पृष्ठ २३

(अनुष्टुप्)

अप्यात्मनि स्थितिं बुद्ध्वा पुद्गलस्य जडात्मन:।
सिद्धास्ते किं न तिष्ठंति स्वस्वरूपे चिदात्मनि।।४०।।

(दोहा)

जब जड़ पुद्गल स्वयं में सदा रहे जयवंत।
सिद्धजीव चैतन्य में क्यों न रहे जयवंत।।४०।।

जब जड़रूप पुद्गल स्वयं में स्थित रहता है; तब वे सिद्ध भगवान अपने चैतन्यात्मस्वरूप में क्यों नहीं रहेंगे ?

तात्पर्य यह है कि रूपी पदार्थ अपने-अपने स्वरूप में रहते हैं। अत: **जड़ पुद्गल भी अपने स्वरूप में रहता है और चैतन्य आत्मा भी स्वस्वरूप में ही रहते हैं।**

नियमसार गाथा २७

विगत गाथा में परमाणु संबंधी विशेष व्याख्यान करने के उपरान्त अब इस गाथा में स्वभावपुद्गल के स्वरूप का व्याख्यान करते हैं।

गाथा मूलत: इसप्रकार है ह्न

एयरसरूवगंधं दोफासं तं हवे सहावगुणं।
विहावगुणमिदि भणिदं जिणसमये सव्वपयडत्तं।।२७।।

(हरिगीत)

स्वभाव गुणमय अणु में इक रूप रस गंध फरस दो।
विभाव गुणमय खंध तो बस प्रगट इन्द्रिय ग्राह्य है।।२७।।

जो पुद्गल एक रस, एक वर्ण, एक गंध और दो स्पर्श वाला हो; वह पुद्गल स्वभाव गुणवाला है और विभाव गुणवाला पुद्गल तो प्रगटरूप से इन्द्रियग्राह्य है ह्न जैनागम में ऐसा कहा गया है।

इस गाथा का भाव तात्पर्यवृत्ति टीका में मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव इसप्रकार स्पष्ट करते हैं ह्न

''यह स्वभावपुद्गल के स्वरूप का व्याख्यान है। चरपरा, कड़वा, कसायला, खट्टा और मीठा ह्न इन पाँच रसों में से कोई एक रस; सफेद, पीला, हरा, लाल और काला ह्न इन पाँच वर्णों में से कोई एक वर्ण; सुगंध और दुर्गन्ध में से कोई एक गंध तथा कड़ा-नरम, हल्का-भारी, ठंडा-गरम और रूखा-चिकना ह्न इन आठ स्पर्शों में से अविरुद्ध दो स्पर्श ह्न **ये पाँच जिनेश्वर के मत में परमाणु के स्वभावगुण हैं।**

विभावपुद्गल विभावगुणात्मक होता है। दो परमाणुओं से लेकर अनंत परमाणुओं से बना हुआ स्कंध विभावपुद्गल है। विभावपुद्गल के विभावगुण सम्पूर्ण इन्द्रियों के द्वारा ग्राह्य हैं, जानने में आने योग्य हैं ह्न ऐसा गाथा का अर्थ है।''

इसके उपरान्त टीकाकार मुनिराज एक गाथा और एक छन्द उद्धृत करते हैं तथा उसके बाद एक छन्द स्वयं भी लिखते हैं।

'तथा चोक्तं पंचास्तिकायसमये ह्न तथा पंचास्तिकाय नामक शास्त्र में कहा है' ह्न ऐसा कहकर टीकाकार पद्मप्रभमलधारिदेव जो गाथा उद्धृत करते हैं; वह गाथा इसप्रकार है ह्न

एयरसवण्णगंधं दोफासं सद्दकारणमसद्दं।
खंधंतरिदं दव्वं परमाणुं तं वियाणाहि।।१२।।[१]

(हरिगीत)

एक रस गंध वर्ण एवं फास दो जिसमें रहें।
वह शब्द का कारण अशब्दी खंद में परमाणु है।।

एक रस, एक वर्ण, एक गंध और दो स्पर्शवाला परमाणु शब्द का कारण है, स्वयं अशब्द है और स्कंध के भीतर है; तथापि द्रव्य है।

इसके बाद **'उक्तं च मार्गप्रकाशे ह्न** मार्गप्रकाश नामक ग्रंथ में कहा है' ह्न ऐसा कहकर जो छन्द लिखते हैं; वह इसप्रकार है ह्न

(अनुष्टुप्)

वसुधान्त्यचतु:स्पर्शेषु चिन्त्यं स्पर्शनद्वयम्।
वर्णो गन्धो रसश्चैक: परमाणो: न चेतरे।।१३।।

(दोहा)

अष्टविध स्पर्श अन्तिम चार में दो वर्ण इक।
रस गंध इक परमाणु में हैं अन्य कुछ भी है नहीं।।

परमाणु में आठ प्रकार के स्पर्शों में अन्तिम चार स्पर्शों में से दो स्पर्श, एक वर्ण, एक गंध और एक रस होता है, अन्य नहीं।

मूल गाथा, उसकी टीका और उसमें समागत उद्धरणों के भाव को आध्यात्मिक-सत्पुरुष श्री कानजी स्वामीजी इसप्रकार स्पष्ट करते हैं ह्न

''कोमल-कठोर, हल्का-भारी, शीत-ऊष्ण और स्निग्ध-रूक्ष इन आठ स्पर्शों में से अन्तिम चार स्पर्शों के अविरुद्ध दो स्पर्श ह्न ये जिनमत में परमाणु के स्वभाव गुण कहे गये हैं।

देखो ! स्पर्श की कोमल, कठोर इत्यादि आठ पर्यायें हैं न ! एक तो परमाणु में इन आठ पर्यायों में से अन्तिम चार स्पर्शों के अविरुद्ध दो स्पर्श होते हैं। अर्थात् ऊष्णपर्याय होवे तो उस समय शीतपर्याय नहीं होती और शीतपर्याय के समय ऊष्णपर्याय नहीं होती; परन्तु शीतपर्याय और स्निग्धपर्याय अथवा ऊष्णपर्याय और

१. पंचास्तिकाय, गाथा ८१

स्निग्धपर्याय एकसाथ हो सकती है अथवा शीतपर्याय और रूक्षपर्याय एक साथ हो सकती है।

अहा ! यहाँ परमाणु की पर्याय लेना है न ! तो एक रस, एक वर्ण, एक गंध और ऊपर कहे गये आठ स्पर्शों में से अन्तिम चार स्पर्शों में अवरुद्ध दो स्पर्श ह्न इसप्रकार परमाणु के स्वभावगुण अर्थात स्वभाव-पर्यायें वीतराग भगवान के ज्ञान में हैं।[१]

दो परमाणुओं से लेकर अनंत परमाणुओं का बना हुआ स्निग्ध विभावपुद्गल है और उस विभावपुद्गल की विभावपर्यायें होती हैं। यहाँ विभावगुण का अर्थ विभावपर्याये हैं।[२]

स्कन्ध में विभावरूप परिणाम होने पर भी उसमें स्थित परमाणु तो अकेला है, शुद्ध एकद्रव्य है। वस्तुरूप से देखने पर वह शुद्धद्रव्य पर के संबंध से रहित भिन्न वस्तु है। अहा ! अपने छोटे क्षेत्र में रहने पर भी वह परमाणु अपने स्वचतुष्टय में ही है ह्न ऐसी बात सर्वज्ञ के अलावा और कौन कह सकता है ?[३]''

पौद्गलिक परमाणु में पाँच रसों में से कोई एक रस, पाँच वर्णों में से कोई एक वर्ण, दो गंधों में से कोई एक गंध और आठ स्पर्शों में से दो स्पर्श ह्न इसप्रकार पाँच गुण होते हैं। **ध्यान रहे यहाँ पर्यायों को ही गुण कहा जा रहा है।**

यहाँ एक प्रश्न हो सकता है कि आठ स्पर्शों में से कौन से दो स्पर्श लेना हैं ?

इसके उत्तर में कहते हैं कि शीत और उष्ण तथा रूक्ष और स्निग्ध ह्न इन चार स्पर्शों के एकसाथ रह सकने योग्य चार जोड़े बनेंगे।

वे चार जोड़े इसप्रकार हैं ह्न १. शीत-स्निग्ध, २. शीत-रूक्ष, ३. उष्ण-स्निग्ध और ४. उष्ण-रूक्ष।

परमाणु में उक्त चार जोड़ों में से कोई एक जोड़ा रहेगा।

इसके उपरान्त मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव एक छन्द स्वयं अपनी ओर से भी लिखते हैं; जो इसप्रकार है ह्न

(मालिनी)

अथ सति परमाणोरेकवर्णादिभास्वन्
निजगुणनिचयेऽस्मिन् नास्ति मे कार्यसिद्धि:।
इति निजहृदि मत्त्वा शुद्धमात्मानमेकम्
परमसुखपदार्थी भावयेद्भव्यलोक:।।४१।।

(दोहा)

वरणादि परमाणु में रहें न कारज सिद्धि।
माने भवि शुद्धात्म की करे भावना नित्य।।४१।।

१. वीतराग-विज्ञान : अप्रैल २००८, पृष्ठ २३ २. वही, पृष्ठ २३ ३. वही, पृष्ठ ४

यदि परमाणु उक्त एक वर्णादिरूप प्रकाशित होते हुए निजगुण समूह में है तो उसमें मेरी कोई कार्यसिद्धि नहीं होती।

इसप्रकार अपने हृदय में मानकर परमसुख का अर्थी भव्यसमूह एकमात्र शुद्ध आत्मा की भावना करें।

इस छन्द का भाव आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजी स्वामी इसप्रकार स्पष्ट करते हैंह्न

''यहाँ ऐसा कहते हैं कि जो यह एक-एक रजकण परमाणु है, वह स्वयं के गुण-पर्याय में रहता है, आत्मा में नहीं रहता; इसलिए हम जड़ और उसके गुणों को जानकर अपने गुण में रहेंगे। जब जड़ अपने गुणों में रहता है तो मैं चेतन अपने में क्यों न रहूँ। अहा ! मैं तो भगवान आत्मा हूँ, जिसमें ज्ञान, आनन्द और शांति भरी है।

वे रजकण उनकी शक्ति और दशा में रहते हैं; परन्तु उससे हमारी कोई कार्यसिद्धि नहीं है। हमारे अपने गुणों में रहने में ही हमारी कार्यसिद्धि है।[१]

मैं अखण्डानन्द शुद्ध चैतन्यमय धातु हूँ, चैतन्यस्वरूप हूँ ह्न ऐसे निजस्वरूप के सन्मुख होकर उसमें एकाग्र होना, ध्यान में उसकी भावना करना, वर्तमान ज्ञान की दशा का ध्येय-विषय ध्रुव को बनाना ह्न उसको भावना कहा जाता है और उसी का नाम धर्म है।[२]

भगवान त्रिलोकीनाथ सर्वज्ञ कहते हैं कि जो भव्यसमूह जीव हैं; वे एक शुद्धात्मा को भावे अर्थात् जिसमें अनन्त शक्ति, अनन्त शांति, अनन्त आनन्द आदि अपरिमित गुण पड़े हैं ह्न ऐसे भगवान में अन्तर-एकाग्र होकर उस एक की भावना करे, इसी का नाम धर्म है और यही मुक्ति का उपाय है।[३]''

इसप्रकार इस कलश में यही कहा गया है कि परमाणु की स्थिति जो कुछ भी हो; पर उससे मुझे क्या प्रयोजन है; क्योंकि मेरे आत्म-कल्याणरूप कार्य की सिद्धि से उसका कोई संबंध नहीं है।

मेरे कार्य की सिद्धि तो एकमात्र शुद्धात्मा की आराधना से होगी। अत: मैं तो निज शुद्धात्मा की भावना भाता हूँ, उसी को ध्याता हूँ।

नियमसार गाथा २८

विगत गाथा में स्वभावपुद्गल के स्वरूप का व्याख्यान करने के उपरान्त अब इस गाथा में पुद्गलपर्याय के स्वरूप का व्याख्यान करते हैं। गाथा मूलत: इसप्रकार हैह्न

अण्णणिरावेक्खो जो परिणामो सो सहावपज्जाओ।
खंधसरूवेण पुणो परिणामो सो विहावपज्जाओ॥२८॥

(हरिगीत)

स्वभाविक पर्याय पर निरपेक्ष ही होती सदा।
पर विभाविक पर्याय तो स्कंध ही होता सदा॥२८॥

१. वीतराग-विज्ञान : जुलाई २००८, पृष्ठ २० २. वही, पृष्ठ ४ ३. वही : अगस्त ०८, पृष्ठ २०

अन्य की अपेक्षा से रहित जो परिणाम है; वह स्वभावपर्याय है और स्कंधरूप परिणाम विभावपर्याय है।

इस गाथा का भाव तात्पर्यवृत्ति टीका में मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव इसप्रकार स्पष्ट करते हैं ह्न

''यह पुद्गलपर्याय के स्वरूप का व्याख्यान है। परमाणुरूप पर्याय पुद्गल की शुद्ध पर्याय है। वह परमाणु पर्याय परमपारिणामिकभाव स्वरूप है, षट्गुणी हानि-वृद्धिरूप है, अतिसूक्ष्म है, अर्थपर्यायात्मक है। सादि-सान्त होने पर भी परद्रव्य से निरपेक्ष होने के कारण शुद्धसद्भूतव्यवहारनयात्मक है अथवा एक समय में भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक होने से सूक्ष्मऋजूसूत्रनयात्मक है।

स्कंधपर्याय स्वजातीयबंधरूप लक्षण से लक्षित होने से अशुद्ध है।''

आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजी स्वामी इस गाथा का भाव इस प्रकार स्पष्ट करते हैं ह्न

''जो यह एक पृथक रजकण-परमाणु है, वह पुद्गल की शुद्धपर्याय है। अहा! जो परमाणु स्कन्ध में शामिल है, यदि वह पृथक होवे तो वह परमाणु की पर्याय परमपारिणामिकभावस्वरूप पुद्गल की शुद्धपर्याय है।

प्रश्न ह्न आत्मा में तो पाँचभाव हैं, इसलिये उसमें पंचमभाव लिया जा सकता है, परन्तु परमाणु में तो पूर्व के चार भाव ही कहाँ हैं जो उसमें पंचमभाव लिया जाये ?

उत्तर ह्न भाई ! पंचमभाव का अर्थ यह है कि जैसे जीव में त्रिकाली भाव है, वैसे ही परमाणु में भी त्रिकाली भाव है। अर्थात् **आत्मा के त्रिकालीभावरूप पंचमभाव की तरह परमाणु में भी त्रिकालीभाव है ह्न** ऐसा यहाँ कहना है। देखो ! **यहाँ तो परमाणु की पर्याय को भी परमपारिणामिकभाव कहा है।**

परमाणु की पर्याय नई उत्पन्न होती है और उसका नाश होता है अर्थात् परमाणुरूप पर्याय सादि-सांत होने पर भी, वह पर की अपेक्षा रहित है और इस कारण परमाणु की वह अकेली पर्याय शुद्ध है। तथा वह अस्तित्व धारण करती है, इसलिये सद्भूत है और एक समय की पर्याय होने से व्यवहारनयस्वरूप है।[१]

परमाणु में उदय, उपशम, क्षयोपशम और क्षायिकभाव नहीं है, इसलिये उसको पारिणामिकभाव कहा है।[२]

अब गाथा के दूसरे भाग की बात आती है ह्न ये जो परमाणु इकट्ठे हुये हैं, वे स्कन्ध हैं, पिण्डरूप हैं और स्वजातीय बंधरूप अर्थात् एक परमाणु का दूसरे परमाणु के साथ

१. वीतराग-विज्ञान : सितम्बर २००८, पृष्ठ १८ २. वही, पृष्ठ ४

एकरूप रहना ह्न इस लक्षण से लक्षित होने के कारण अशुद्ध हैं अर्थात् विभाव है।

गाथा में विभाव शब्द आया है, जबकि टीका में अशुद्ध शब्द का प्रयोग किया है।

पुद्गल पर्याय परमाणु में शुद्ध है और यदि वह स्कन्धरूप होवे तो अशुद्ध है ह्न ऐसे पुद्गल पर्याय के दो प्रकार हैं। इसीतरह भगवान आत्मा रागादिरूप होवे तो वह अशुद्ध है और वह स्वभाव में रहे तो शुद्ध है ह्न ऐसी बात है।[1]''

इसप्रकार इस गाथा में यही कहा गया है कि अन्य की अपेक्षा से रहित होने से परमाणुरूप पर्याय पुद्गल द्रव्य की शुद्धपर्याय है और समानजातीयबंधरूप स्कंधपर्याय विभाव पर्याय है। **पुद्गल द्रव्य की परमाणुरूप शुद्ध अर्थपर्याय षट्गुणी हानि-वृद्धि-रूप है, अत्यन्त सूक्ष्म है और परमपारिणामिकभावस्वरूप है।**

नयों की दृष्टि से विचार करने पर यह या तो अनुपचरितसद्भूतव्यवहारनय का विषय बनेगी या फिर सूक्ष्म ऋजुसूत्रनय का विषय बनेगी।

टीका के अन्त में टीकाकार मुनिराज एक छन्द लिखते हैं, जो इसप्रकार है ह्न

(मालिनी)

परपरिणतिदूरे शुद्धपर्यायरूपे
सति न च परमाणोः स्कन्धपर्यायशब्दः।
भगवति जिननाथे पंचबाणस्य वार्ता
न च भवति यथेयं सोऽपि नित्यं तथैव ।।४२ ।।

(दोहा)

जिसप्रकार जिननाथ के कामभाव न होय।
उस प्रकार परमाणु के शब्दोच्चार न होय ।।४२।।

जिसप्रकार भगवान जिननाथ में पंचबाण के धारी कामदेव की वार्ता नहीं होती; उसीप्रकार परपरिणति से दूर और शुद्धपर्यायरूप होने से परमाणु को स्कंधपर्यायरूप शब्द नहीं होता।

देखो, टीकाकार मुनिराज की जिनभक्ति। कहीं कोई प्रसंग न होने पर भी उदाहरण के रूप में ही सही, वे कामविकार से रहित जिननाथ को याद कर ही लेते हैं।

बात तो मात्र यह बतानी थी कि परमाणु अशब्द होता है; पर इस बात को भी वे इस रूप में प्रस्तुत करते हैं कि **जिसप्रकार जिननाथ कामविकार से रहित हैं; उसीप्रकार परमाणु शब्दोच्चारण का कारण नहीं है; अतः अशब्द है।** ●

१. वीतराग-विज्ञान : सितम्बर २००८, पृष्ठ ४